दैनिक जागरण

अच्छे विचार भी किसी औषधि से कम नहीं होते

मध्यस्थता की मांग

अयोध्या मामले में मध्यस्थता की मांग केवल इसलिए हैरान नहीं करती कि यह तब की जा रही है जब सुप्रीम कोर्ट इस मामले की दिन-प्रतिदिन सुनवाई कर रहा है, बल्कि इसलिए भी करती है, क्योंकि दोनों ओर से केवल एक-एक सदस्य ही आगे आए हैं। मुस्लिम पक्ष से सुन्नी वक्फ बोर्ड और हिंदू पक्ष से निर्वाणी अखाड़ा ने मध्यस्थता समूह से फिर से बातचीत शुरू करने का अनुरोध किया है। कहना कठिन है कि उनके अनुरोध पर सुप्रीम कोर्ट क्या मत व्यक्त करता है, लेकिन क्या यह अच्छा नहीं होता कि सुन्नी वक्फ बोर्ड और साथ ही निर्वाणी अखाड़ा उन सभी को अपने साथ लेते जो इस मामले में वादी-प्रतिवादी की भूमिका में हैं? चूंकि बिना ऐसा किए मध्यस्थता की मांग कर दी गई इसलिए यह अंदेशा होना स्वाभाविक है कि कहीं यह मामले को लटकाने की कोशिश तो नहीं है? इस अंदेशे का एक कारण यह भी है कि दोनों पक्षों के अन्य सदस्य ऐसी किसी मांग से अनभिज्ञता जता रहे हैं। कुछ तो नए सिरे से मध्यस्थता की जरूरत से ही खारिज कर रहे हैं। स्पष्ट है कि जब तक दोनों पक्षों के सभी सदस्य मध्यस्थता की मांग नहीं करते तब तक उस पर गौर करने का कोई कारण नहीं बनता। कम से कम मध्यस्थता की इस मांग के चलते अयोध्या मामले पर सुप्रीम कोर्ट में हो रही सुनवाई तो नहीं ही रुकनी चाहिए। वैसे भी इसकी संभावना कम ही है कि नए सिरे से मध्यस्थता के जरिये किसी सर्वमान्य नतीजे पर पहुंचा जा सकता है। ऐसा तो तभी हो सकता है जब दोनों पक्षों के सभी सदस्य न केवल फिर से मध्यस्थता के लिए तैयार हों, बल्कि उनके पास विवाद के हल का कोई ठोस फार्मूला भी हो।

फिलहाल बेहतर यही होगा कि आपसी बातचीत से किसी समाधान तक पहुंचने की इच्छा रखने वाले पहले किसी फार्मूले पर सहमति बनाने का काम करें। इस बीच सुप्रीम कोर्ट को अपना काम जारी रखना चाहिए, क्योंकि वह 24 दिनों की सुनवाई पूरी कर चुका है। माना जाता है कि 50 प्रतिशत से अधिक सुनवाई पूरी हो चुकी है। सुप्रीम कोर्ट को सुनवाई रोकने के बजाय फैसले तक पहुंचने का काम इसलिए करना चाहिए, क्योंकि अगर नए सिरे से मध्यस्थता या फिर अन्य किसी कारण सुनवाई रुकती है तो मामला लटक सकता है। सुप्रीम कोर्ट इससे अवगत ही होगा कि इस मामले की सुनवाई में खलल डालने के लिए कैसे-कैसे जतन हुए हैं? चूंकि सुप्रीम कोर्ट की संविधान पीठ में से किसी न्यायाधीश के सेवानिवृत होने की स्थिति में पूरी कवायद नए सिरे से करनी होगी इसलिए ऐसा कुछ नहीं होना चाहिए जिससे समय और संसाधन की बर्बादी हो।

ममता का दिल्ली दौरा

बंगाल की मुख्यमंत्री एवं तृणमूल प्रमुख ममता बनर्जी का केंद्र सरकार के साथ सियासी घमासान जगजाहिर है। केंद्र से ममता इतनी नाराज हैं कि वह पीएम नरेंद्र मोदी के शपथग्रहण समारोह में भी नहीं गईं। यहां तक कि नीति आयोग की बैठक से लेकर पीएम मोदी की और भी कई अहम बैठकों से वद दूर रहीं, परंतु अचानक सोमवार को खबर आई है कि मंगलवार की शाम को ममता दिल्ली जा रही हैं। इस दौरान वह पीएम मोदी से भी मुलाकात कर सकती हैं। यदि सब कुछ सही रहा तो करीब डेढ़ वर्ष बाद बुधवार को ममता मोदी से मिलेंगी। लोकसभा चुनाव में तो तृणमूल प्रमुख ने पीएम मोदी पर जमकर निशाना साधा था। मिट्टी के लड्डू से लेकर पीएम नहीं मानने तक से इन्कार कर दिया था। अब कहा जा रहा है कि ममता ने पीएम मोदी से मुलाकात के लिए वक्त मांगा है। उधर राज्य के प्रशासनिक अधिकारियों के मुताबिक यह एक आधिकारिक दौरा है और इसका संबंध बंगाल से है। केंद्र और ममता के कटु संबंधों के बीच अचानक इस दौरे पर सियासी विश्लेषकों की नजरें टिक गई हैं, क्योंकि बालाकोट एयर स्ट्राइक से लेकर जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने और वहां के तीन पूर्व मुख्यमंत्रियों को नजरबंद करने से लेकर पी चिदंबरम की गिरफ्तारी तक का ममता ने खुलकर विरोध किया था। अभी रविवार को ही अंतरराष्ट्रीय लोकतंत्र दिवस पर ममता बनर्जी ने देश में सुपर इमरजेंसी का आरोप लगाया था। ममता ने लोगों से अपील की कि सबको यह प्रयास करना चाहिए कि संविधान द्वारा मिले अधिकारों और स्वतंत्रता की रक्षा करें। उन्होंने इशारों में केंद्र सरकार पर निशाना साधते हुए एक ट्वीट किया-आइए, आज अंतरराष्ट्रीय लोकतंत्र दिवस पर हम उन संवैधानिक मूल्यों की रक्षा का संकल्प लें, जिन पर हमारे देश का निर्माण हुआ था। इस सुपर इमरजेंसी के दौर में हमें संविधान द्वारा मिले अधिकारों और आजादी की रक्षा के लिए सब कुछ करना चाहिए, लेकिन इसके अगले ही दिन ममता के दिल्ली जाने को लेकर चर्चा तेज हो गई है, क्योंकि सारधा कांड में सीबीआइ ममता के करीबी आइपीएस अफसर राजीव कुमार को तलाश रही है। रविवार एवं सोमवार को सीबीआइ ने राज्य सचिवालय जाकर राजीव कुमार के एजेंसी के समक्ष पेश नहीं होने के संबंध में मुख्य सचिव और गृह सचिव के लिए पत्र दिए हैं। ऐसे में अब ममता का दिल्ली जाना और पीएम से मुलाकात को लेकर चर्चा होना लाजिमी है। माकपा इस मुद्दे पर ममता को एक बार फिर घेरने की कोशिश करेगी।

अतीत के दंश झेलती कांग्रेस

रशीद किदवई

पंजाब में लंबे अर्से तक चले उग्रवाद के दौरान हजारों निर्दोष मारे गए, लेकिन उन पर सिख विरोधी दंगों की तरह कोई राजनीतिक विमर्श शुरू नहीं हुआ

अवधेश राजपूत

वर्ष 1984 के सिख विरोधी दंगों की कुछ वे फाइलें नए सिरे से खुल गई हैं, जिनमें मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री कमलनाथ का भी नाम है। यह एक तरह से कांग्रेस नेतृत्व को चुनौती है। सोनिया गांधी और कांग्रेस के लिए यह मुनासिब वक्त है कि वह 1984 की राजनीतिक परिस्थितियां स्पष्ट करें। बताएं कि तब उग्रवाद और अलगाववाद के चलते पंजाब के क्या हालात थे? कांग्रेस ऐसा करके ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और अमित शाह के इस दांव का सामना कर सकती है। हालांकि किसी भी सभ्य एवं लोकतांत्रिक समाज में जनमत के लिए प्रस्तुत किए गए तर्कों का गलत हो जाना कोई नई बात नहीं। इसके बावजूद कांग्रेस यह तो बता ही सकती है कि वर्ष 1992-97, 2007-2012 और 2017 से अब तक पंजाब में जब कांग्रेस का शासन रहा तब उस दौरान राज्य किन परिस्थितियों से गुजरा। दिल्ली में भी शीला दीक्षित के नेतृत्व में कांग्रेस 15 वर्षों तक सत्तारूढ़ रही और उस समय पार्टी का केंद्रीय नेतृत्व सोनिया गांधी के हाथों में था। 1984 के सिख विरोधी दंगे बहुत भावुक और संवेदनशील मामला है। लिहाजा उन पर चर्चा करते हुए राहुल गांधी पूरी तरह सचेत रहते हैं। इंग्लैंड के सांसदों और स्थानीय नेताओं के साथ वार्ता में राहुल गांधी ने कहा, 'उसे लेकर मेरे दिमाग में कोई शंका नहीं है। वह एक त्रासदी थी, एक दुखद अनुभव। आप कहते हैं कि कांग्रेस पार्टी उसमें लिप्त थी। मैं इससे सहमत नहीं हूं। वह तो बस मारकाट और एक त्रासदी थी।' इसके विपरीत अर्णब गोस्वामी को दिए एक साक्षात्कार में राहुल गांधी ने स्वीकार किया था कि 1984 के सिख विरोधी दंगों में कुछ कांग्रेसी लिप्त थे। इस साक्षात्कार के दौरान कुछ इस तरह की बातें हुई थीं:

अर्णबः क्या सिख विरोधी दंगों में कांग्रेसी लिप्त थे?

राहुलः शायद कुछ कांग्रेसी लिप्त रहें होंगे।

अर्णबः क्या पीड़ितों को इंसाफ मिला?

राहुलः एक कानूनी प्रक्रिया होती है, जिससे उन्हें गुजरना पड़ा।

अर्णबः आप स्वीकार करते हैं कि कुछ कांग्रेसी इसमें लिप्त रहे होंगे?

राहुलः कुछ कांग्रेसियों को इसके लिए सजा दी गई।

अपनी राजनीतिक और चुनावी मजबूरियों के तहत राहुल गांधी वे बातें नहीं कह सके जो 1999 में दक्षिण दिल्ली से लोकसभा चुनाव लड़ते वक्त डॉ. मनमोहन सिंह ने कही थीं। हालांकि पूरे दमखम से चुनाव लड़ने के बावजूद उन्हें भाजपा के विजय कुमार मल्होत्रा के हाथों हार का सामना करना पड़ा था। 1999 के चुनाव में मनमोहन सिंह ने उन दंगों के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को जिम्मेदार ठहराने की कोशिश की थी। 2 सितंबर 1999 को दिल्ली के प्रेस क्लब ऑफ इंडिया में पत्रकार वार्ता को संबोधित करते हुए डॉ. मनमोहन सिंह ने 1984 के सिख विरोधी दंगों को 'एक काला धब्बा और बेहद दुखद घटना' करार दिया था। इसके साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि इसमें बतौर संगठन कांग्रेस का कोई हाथ नहीं था। उन्होंने यह भी कहा कि विभिन्न पुलिस थानों में दर्ज एफआइआर से साबित होता है कि इन दंगों में आरएसएस के कई कार्यकर्ता लिप्त थे। बाद में मनमोहन सिंह ने सफाई दी कि इन दंगों के लिए उन्होंने पूरे तौर पर आरएसएस को जिम्मेदार नहीं ठहराया था। 13 दिसंबर 1999 को उन्होंने कहा, 'चुनावी फायदा उठाने के लिए मेरे बयान को तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया। मैंने कहा था कि कांग्रेस, आरएसएस या अन्य संगठनों से जुड़े जो भी लोग इन दंगों में लिप्त थे, उन्हें इसकी सजा जरूर मिलनी चाहिए।'

1984 के दंगों में हुए सिखों के नरसंहार पर 11 अगस्त, 2005 को बतौर प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने राज्यसभा में बिना शर्त माफी मांगी थी। उस वक्त उन्होंने जो कुछ बोला उसमें से आरएसएस का नाम गायब था। उन्होंने कहा कि वे किसी 'झूठे सम्मान' की खातिर नहीं खड़े हैं और उनका सिर शर्म से झुका हुआ है। उन्होंने तब 1999 की एक घटना भी याद की कि कैसे उस वक्त वह हरमिंदर साहिब में सोनिया गांधी के साथ थे और 'दोनों ने यह दुआ की कि हमें हिम्मत दें और राह दिखाएं कि अपने देश में दोबारा ऐसी घटनाएं कभी न हों।' उन्होंने यह भी कहा कि 'इंसान होने के नाते हमें गर्व है और हममें इतनी प्रतिभा है कि सबके लिए भविष्य की नई इबारत लिख सकें।'

कांग्रेस का एक प्रभावशाली वर्ग निजी तौर पर मानता है कि सिख विरोधी दंगे जैसे संवेदनशील मामले में राहुल गांधी लिबरल और वामपंथी विचारकों से प्रभावित हैं, अन्यथा वह यह भी बता सकते थे कि मनीष तिवारी और अजय माकन जैसे कांग्रेस के नेताओं ने खुद पंजाब में फैले आतंकवाद के दंश झेले हैं। मनीष तिवारी के पिता डॉ. वीएन तिवारी प्रोफेसर और लगभग 40 किताबों के लेखक थे। 1984 में आतंकवादियों ने गोली मारकर उनकी हत्या कर दी थी। इसी तरह अजय माकन के भाई, सांसद और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा के दामाद ललित माकन की 31 जुलाई, 1985 को दक्षिण दिल्ली में एक खौफनाक हमले में हत्या कर दी गई थी।

सरकारी संरक्षण में होने वाली हिंसा और किसी आतंकी हमले में खासा अंतर होता है, लेकिन प्रो.वीएन तिवारी, ललित माकन और इसी तरह की कुछ और नृशंस हत्याओं का गहरा असर हुआ। इस तरह की बातें भी कही जाती हैं कि पंजाब में लंबे समय तक चलने वाले उग्रवाद के दौरान कई हजार निर्दोष लोग मारे गए, लेकिन उन पर किसी तरह का राजनीतिक विमर्श शुरू नहीं हुआ। 1980 के दौर में भाजपा के वरिष्ठ नेता मदनलाल खुराना पंजाब की घटनाओं का जिक्र अवश्य करते थे। उस वक्त पंजाब में होने वाले हिंसक हमलों के बाद वह 'हम लाशें गिनते-गिनते थक गए' जैसे नारों से दिल्ली की दीवारों को रंग देते थे।

मैंने अपनी किताब 'बैलेट-टेन एपीसोड्स दैट हैव शेप्ड इंडियाज डेमोक्रेसी में बताया है कि पंजाब में 1980 के प्रारंभ में जब अलगाववादी आंदोलन पनप रहा था तो उसे दबाने के इंदिरा गांधी के प्रयासों को आरएसएस का समर्थन प्राप्त था। संघ के विचारक नानाजी देशमुख ने हिंदी पत्रिका 'प्रतिपक्ष' (25 नवंबर 1984) में एक आलेख लिखा था। उसके अंत में उन्होंने राजीव गांधी को शुभकामनाएं देते हुए उनका हौसला बढ़ाया। यह वह समय था जब 1984-85 के आम चुनाव में एक माह से भी कम समय बचा था। नानाजी देशमुख ने इंदिरा गांधी के बारे में लिखा, 'आखिर इंदिरा गांधी ने एक महान शहीद के रूप में इतिहास में स्थाई स्थान प्राप्त कर ही लिया। अपनी नैसर्गिक निर्भीकता और मेधा के बल पर उनमें यह क्षमता थी कि देश को एक दशक आगे ले जा पाएं। उनमें इतनी प्रतिभा थी कि एक भ्रष्ट और विभाजित समाज में प्रचलित पतनोन्मुखी राजनीतिक तंत्र को बखूबी चला सकें।' क्या पीएम मोदी और शाह इन वास्तविकताओं का सामना करने को तैयार हैं?

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं ओआरएफ में विजिटिंग फेलो हैं)

response@jagran.com

जन भागीदारी वाली सरकार

भूपेंद्र यादव

यह वह दुर्लभ कालखंड है जब सरकार और जनता एकजुट होकर देश के विकास को गति देने का काम कर रही है

बीते सात सितंबर को रात एक बजकर 40 मिनट पर जब देश की नजरें मिशन चंद्रयान पर टिकी थीं तब इस मिशन के अंतिम कुछ मिनटों में ऐसी परिस्थिति पैदा हुई कि लोगों की सांसें अटक सी गईं। उस समय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी भी इसरो मुख्यालय में मौजूद थे। रात करीब दो बजे जब चंद्रयान से लैंडर विक्रम का संपर्क टूटने की बात सामने आई तब इसरो के वैज्ञानिकों के साथ अनौपचारिक बातचीत में प्रधानमंत्री मोदी ने जो कहा उसकी अपेक्षा एक कुशल नेतृत्वकर्ता से ही की जा सकती थी। उन्होंने कहा, 'जीवन में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। आप लोगों ने जो किया वह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। देश आप पर गर्व करता है। आपकी मेहनत ने बहुत कुछ सिखाया है। विज्ञान में असफलता नहीं होती, सिर्फ प्रयोग और प्रयास होते हैं।' प्रधानमंत्री मोदी के ये शब्द उन कठिन क्षणों में इसरो के वैज्ञानिकों सहित देश के करोड़ों नागरिकों को हौसला और भरोसा देने वाले थे। किसी भी देश अथवा समाज में जननायक वह होता है जो वृहद समाज की अपेक्षाओं को पूरा करने का न सिर्फ हौसला देता है, बल्कि अपनी कारगर रणनीति से विषम परिस्थितियों में लोगों में भरोसे का भाव जागृत कर उन परिस्थितियों से उबरने की क्षमता भी पैदा करता है। प्रधानमंत्री मोदी ने पिछले कार्यकाल में इसी नीति को ईमानदारी से जनता के बीच रखते हुए निडर होकर फैसले लिए। तात्कालिक परिणाम और अस्थाई समाधान के दिखावटी एवं आधे-अधूरे प्रयासों के बजाय उन्होंने स्थाई समाधान तलाशने की प्रवृत्ति को बल दिया। इसी कारण उन्हें व्यापक समर्थन मिला। एक तरह से प्रधानमंत्री मोदी के पिछले कार्यकाल के अनवरत प्रयासों पर जनता के भरोसे का ही प्रतिफल 2019 का जनादेश।

भारतीय राजनीति के लिए वर्तमान कालखंड विश्वास और स्वाभिमान से ओतप्रोत है। यह सच है कि प्रत्येक समाज में लोगों की कुछ व्यक्तिगत आकांक्षाएं होती हैं, किंतु इसके समानांतर वही समाज एक सक्षम एवं सबल नेतृत्व की आवश्यकता भी महसूस करता है। यह भी सच है कि बेशक राजनीति सबकी रुचि का क्षेत्र नहीं होती, परंतु किसी न किसी रूप में सबका जीवन इससे प्रभावित होता है। यही कारण है कि राजनीति अथवा राजनेताओं से हर व्यक्ति कुछ न कुछ अपेक्षाएं जरूर रखता है। नरेंद्र मोदी ने जनता की अपेक्षाओं को किसी संकुचित सीमा में बांधने के बजाय उन्हें पूर्ण क्षमता तक उड़ान के अवसर में तब्दील किया है। इससे भी एक कदम आगे बढ़कर उन्होंने न सिर्फ अपेक्षाओं को विस्तार दिया है, बल्कि लोगों में आत्मविश्वास का भाव भी जगाया है। भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में शासन में रहते हुए, जनाकांक्षाओं को समेटे हुए और सबके विश्वास के साथ आगे बढ़ते हुए जननायक का दर्जा हासिल करना सरल नहीं है, क्योंकि यहां शासन से इतर ही जननायक अधिक रहे हैं।

प्रधानमंत्री मोदी की कार्यशैली का सबसे बड़ा पक्ष उनका सकारात्मक दृष्टिकोण है। मुझे गुजरात में सद्भावना मिशन में शामिल होने का अवसर मिला था। वह नरेंद्र मोदी के खिलाफ तत्कालीन संप्रग सरकार द्वारा रचे गए षड्यंत्रों का दौर था। सद्भावना मिशन के दौरान उपवास पर रहे नरेंद्र मोदी ने कहा था, 'जो पत्थर हम लोगों पर फेंके गए, उनका इस्तेमाल हम लोगों ने सीढ़ी बनाने में किया।' इसके बाद 2014 में जब वह पूर्ण बहुमत के साथ चुनकर देश के प्रधानमंत्री बने तब उनका यह कहना, 'मेरी सरकार गरीब कल्याण को समर्पित है', उन्हें सकारात्मकता के साथ जनहित में कुछ कर गुजरने वाले विराट छवि के जननेता के रूप स्थापित करता है। उनके व्यक्तित्व में युगानुकूलता भी है और परंपरा की गहरी समझ भी।

देश में हो रहे बहुमुखी बदलावों के क्रम में भारतीय लोकतंत्र में भी बदलाव हो रहे हैं। 2019 के चुनावों में देश ने वंशवाद, जातिवाद और तुष्टीकरण की राजनीति को नकारते हुए राजनीति की धारा को एक सकारात्मक दिशा में मोड़ने में सफलता हासिल की है। चूंकि एक परिपक्व संसदीय लोकतंत्र में राजनीतिक दलों को भी सर्वस्वीकृत और सक्षम नेतृत्व चाहिए होता है, चाहे परिवार हो, संस्था हो, समूह हो-सबकी मजबूती नेतृत्व की स्वीकार्यता और विश्वसनीयता पर टिकी होती है। भारतीय लोकतंत्र में एक पार्टी के प्रभुत्व को हटाने का कार्य अगर भाजपा सफलतापूर्वक कर सकी तो इसका कारण यही है कि इसके शीर्ष नेतृत्व ने अपने कार्यों से जनता में लोकप्रियता हासिल की। यह स्वीकार करने में संदेह नहीं होना चाहिए कि 'कोई नृप होऊ, हमे का हानि' कहने वाला समाज अब शासन में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर रहा है। वह सरकार के साथ इस विश्वास के साथ खड़ा है कि उसकी सरकार जनभागीदारी की सरकार है। आज भारत के पास जनभागीदारी से सरकार चलाने वाला एक संवादप्रिय जननेता है। पीएम मोदी के 'मन की बात' में देश अपने मन में उमड़ने वाली आशाओं को तलाशता और पाता है।

देशवासियों को यह भरोसा है कि उनका नेतृत्वकर्ता अपनी परंपरा और आस्था के प्रतीकों की गहरी समझ रखने के साथ-साथ भारतीयता के मूल्यों को जीने वाला भी है। प्रधानमंत्री मोदी आम भारतीय के पुरुषार्थ और ईमानदारी को भरपूर सम्मान देते हैं और उसे आगे बढ़ने का उत्साह भी देते हैं। देश के मानस में उनके प्रति अटूट विश्वास के पीछे यह बड़ी वजह है। समन्वय का संकल्प और सबको साथ लेकर चलने की मंशा मोदी सरकार के पिछले और वर्तमान कार्यकाल में स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। स्वच्छता, पर्यावरण और जलशक्ति जैसे विषयों को प्रधानमंत्री मोदी ने करीब से छूने और शासन की प्राथमिकताओं का हिस्सा बनाने की सराहनीय पहल की है। उन्होंने अपने प्रयासों से मानवीय संवेदनाओं को करीब से छूने का भी प्रयास किया है। अनुच्छेद-370 जैसे विषय पर इतने दलों का सहयोग लेकर इसे समाप्त करना ऐतिहासिक रूप से प्रधानमंत्री मोदी की बड़ी राजनीतिक उपलब्धि है। भारत की राजनीति में यह दुर्लभ कालखंड है, जब सरकार और जनता एकजुट होकर देश के विकास को गति देने का काम कर रही है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारत विकास के नए आयामों को छुएगा, ऐसा विश्वास सभी को है।

(लेखक राज्यसभा सदस्य एवं भाजपा के राष्ट्रीय महासचिव हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

जीवन के मार्ग

मार्ग सीधे हों तो उन पर चलने में आनंद नहीं आता। राह पर चलने के लिए घुमाव और टेढ़े-मेढ़े मोड़ आने बेहद जरूरी हैं। यदि व्यक्ति के पास बहुत अधिक सुख सुविधाएं हों तो वह आराम से जीवन जीता है। इसके विपरीत यदि विपरीत परिस्थितियां हों तो दो वक्त की रोटी के लिए मनुष्य को जान हथेली पर लेकर घूमना पड़े तो वह यह भी करता है। व्यक्ति बहुत जल्दी आदतों और परंपराओं का शिकार हो जाता है। इस कारण वह सदियों से चली आ रही रूढ़ियों एवं धारणाओं में विश्वास करता है। यहीं वह गलती करता है और अनेक उन आविष्कारों का सृजन करने से चूक जाता है, जिनका सृजन वह सरलता से कर सकता था।

ऑर्थर कॉनन डायल की कहानी 'सिल्वर ब्लेज' में शेरलॉक होम्स अपराध की गुत्थी सुलझाने में लगा हुआ है। वह कहानी में लगभग उन सभी बातों पर ध्यान देता है जिन्हें आमतौर पर लोग अनदेखा कर आगे बढ़ते चलते हैं। वह यह देखता है कि कहानी में कुत्ता भौंका नहीं था, इसका मतलब अपराध करने वाला जानकार होगा, क्योंकि अनजान व्यक्ति पर कुत्ता अवश्य भौंकता है। यह एक छोटी सी बात है जिसे सहजता से नजरअंदाज किया जा सकता है, लेकिन इसे नजरअंदाज करने से ही अपराधी की सुई दूसरी ओर मुड़ जाती है और वास्तविक अपराधी तक पहुंचने में समय लगता है।

यह कहानी इस बात को उजागर करती है कि लोग आमतौर पर उन बातों पर ध्यान नहीं देते जिन्हें नकारात्मक संकेत कहा जाता है। सकारात्मक जानकारी पर ध्यान देना व्यक्ति की मनोवृत्ति है। अधिकतर लोग सिर्फ उसी पर गौर करते हैं जो वे सुन और देख रहे हैं। खामोशी और चुप्पी के पीछे भी अनेक राज छिपे होते हैं, इसलिए जीवन में उन पर भी गौर करनी जरूरी है। कई क्षेत्रों में असफलता के पीछे भी यही कारक प्रमुख होता है। नजरअंदाज वाली बात पर नजर रखी जाने से कई बार राहें सरल हो जाती हैं। यकीन मानिए कई बार बेवजह और सुप्त सी पड़ी चीजों पर नजर डालकर चमत्कार किए जा सकते हैं।

रेनू सैनी

सही ओहदे के लिए तरसती हिंदी

डॉ. मुरलीधर चांदनीवाला

हम अंग्रेजों से तो मुक्त हो गए, लेकिन देश को आजाद कराने वाली हिंदी अंग्रेजी की गुलामी करने के लिए छोड़ दी गई

हिंदी को हथियार बनाकर आजादी हासिल कर लेने वाले हम भारतीयों पर हिंदी के प्रति कृतघ्न कहलाने का ऐसा कलंक लगा हुआ है, जिसे धो डालने की कोशिश कभी नहीं हुई। हजारों साल के संघर्ष भरे इतिहास की ओर मुड़कर जब भी हिंदी अपना चेहरा देखती है, अपने उन घावों को देखकर सिहर जाती है, जो उसके अपनों ने ही दिए। प्राकृत हो या अपभ्रंश, डिंगल हो या पिंगल, वह थी तो हिंदी ही जो जैन संतों, सिद्धों, बौद्धों और राजपुतानों की आवाज बनी।

बीसवीं सदी में महात्मा गांधी ने जब स्वदेशी आंदोलन खड़ा किया, तब उसकी नींव में हिंदी ही थी। इस देश को आजाद कराने में क्रांतिकारियों ने भी हिंदी का ही झंडा उठाया। भारतेंदु और उनके बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला ने साहित्य की कम, हिंदी की ज्यादा सेवा की। अब हिंदी के लिए मर मिटने वाले कहां? जब हिंदी के लिए आखिरी लड़ाई लड़ने का वक्त था, तब हम सोये हुए थे और अब तो हम गहरी नींद में हैं। 1947 में देश तो अंग्रेजों से पिंड छुड़ाकर आजाद हो गया, लेकिन देश को आजाद कराने वाली हिंदी अब अंग्रेजी की गुलामी करने के लिए छोड़ दी गई है। देश को आजाद कराने के लिए हिंदी की वकालत करने वाले महात्मा गांधी, नेहरू सहित कोई भी हिंदी के लिए कुछ नहीं कर पाए। गांधी जी ने कहा था कि बिना राष्ट्रभाषा के राष्ट्र गूंगा है, तो समझ लीजिए, हम बहत्तर साल से गूंगे ही हैं, क्योंकि अब तक हमारी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है। पूरे भारत की तो बात छोड़ दीजिए, हिंदी प्रांतों के सरस्वती-मंदिरों से हिंदी को बाहर खदेड़ने की मुहिम पूरी तरह सफल हो चुकी है। गांव-गांव, शहर-शहर में जितने भी विद्यालय हैं, वहां अंग्रेजी पूजी जा रही है। भारत स्वतंत्र हुआ, उसके पहले तक अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय होते ही नहीं थे। और अब? अंग्रेजों के जमाने में भाषा और शिक्षा के पतन के लिए मैकाले को दोष देते रहे, और अब भी उसे ही दोषी ठहरा कर हम अपना बचाव कर लेते हैं।

हमारे प्रधानमंत्री विदेश जाते हैं, तो हिंदी में बोलते हैं, किंतु स्कूली बच्चों को हिंदी में बोलने की मनाही है। पूरे देश में सभी हिंदी बोल रहे हैं, समझ रहे हैं, लेकिन हिंदी को वाजिब सम्मान देने की बात पर मुंह फेर लेते हैं। यह सब कब तक चलेगा? जब जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 हटाने और तीन तलाक जैसी सदियों पुरानी परिपाटी को खत्म करने के लिए राज्यसभा और लोकसभा में मत हासिल कर हाथोंहाथ निर्णय लिया जा सकता है, तब हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने में कौन सा बड़ा जोखिम है? एक राष्ट्रभाषा के लिए जोखिम उठाना ही पड़े, तो हर्ज क्या है? कोई संदेह नहीं, सब बाधाओं को पार कर हिंदी ही मूर्धाभिषिक्त होगी। हिंद में रहने वाले एक अरब तीस करोड़ लोगों की सर्व-स्वीकार्य भाषा हिंदी नहीं होगी, तो फिर कौन होगी? यदि सियासत न हो तो हिंदी उत्तर और दक्षिण, सबको साथ लेकर चलने की सामर्थ्य रखती है। हिंदी है, तो हम हैं। वह हमारा स्वाभिमान है। हिंदी के बिना कैसा विकास और कैसी स्वाधीनता?

(लेखक भारतीय संस्कृति एवं भाषा के विद्वान हैं)

मेलबाक्स

हिंदी को सहज बनाने की जरूरत

प्रो. कृपाशंकर चौबे के आलेख 'हिंदी के विस्तार में अन्य भाषाओं का हित' में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी के सामंजस्य की जो बात की गई है, वह दूर की कौड़ी है। हकीकत ये है कि हिंदी का सर्वाधिक विरोध दक्षिण भारत में ही होता रहा है। 2019 की नई शिक्षा नीति में हिंदी की अनिवार्यता पर सबसे पहला विरोध दक्षिण भारत से ही दर्ज हुआ था। जिसके कारण केंद्र सरकार को हिंदी भाषा की अनिवार्यता के संबंध में अपने कदम वापस लेने पड़े थे। वस्तुतः हिंदी भाषा के विस्तार में जहां दक्षिण भारतीय भाषाओं का विरोध बाधक है, वहीं हिंदी की बनावटी दुरूहता भी इसके विस्तार में कम बाधक बाधक नहीं है। हिंदी अनुवाद की भाषा इतनी कठिन होती है कि उसे ठीक से समझ पाना मुश्किल हो जाता है। जबकि हिंदी से अंग्रेजी में किया गया अनुवाद सहजता से समझा जा सकता है। क्योंकि अंग्रेजी में शब्दों का नहीं भावगत संदेश का अनुवाद होता है। जबकि ठीक इसके विपरीत हिंदी में शब्दगत अनुवाद से अनुवाद की गई भाषा का भावगत संदेश ही विलुप्त हो जाता है। हिंदी अनुवाद पढ़ने वाला व्यक्ति अनुवादित हिंदी के दुरूह शब्दों में ही उलझकर रह जाता है। हिंदी के संदर्भ में अपनाई जाने वाली यह बेमानी दुरूहता आज हिंदी के पठन-पाठन और विस्तार में बाधक बन रही है। सोशल मीडिया और विज्ञापन के क्षेत्र में हिंदी भाषा का जो दबदबा दिखाई देता है, वह इसलिए है, क्योंकि उसमें प्रयुक्त की जाने वाली हिंदी सर्वग्राही और सहज होती है। कोई भी भाषा अपनी सहजता से ही विस्तार पाती है। इस दृष्टि से हिंदी के उद्धार के लिए इसे अनुवादी दुरूहता से बाहर निकालकर सहज रूप प्रदान करना पड़ेगा। 'रामायण' की अपेक्षा 'रामचरित मानस' की लोकप्रियता इसलिए अधिक है, क्योंकि इसकी भाषा सहज और सर्वग्राही है। इस दृष्टि से हिंदी की भाषाई दुरूहता को सहजता में बदलने की जरूरत है, फिर चाहे भले ही अन्य भाषाओं के प्रचलित शब्दों को हिंदी के शब्दकोश में समाहित क्यों न करना पड़े।

डॉ. वीपी पाण्डेय, अलीगढ़

हिंदी को मिले बढ़ावा

हिंदी भाषा भारतीय संस्कृति का मूल है। हिंदी के प्रति सरकार तथा हिंदी प्रेमियों को दृढ़ इच्छाशक्ति से कार्य करना चाहिए। हिंदी भाषा में रोजगार के मार्ग प्रशस्त करके सरकार लोगों को गर्व की अनुभूति कराए। राष्ट्र के प्रति स्नेह, देशभक्ति और भारत की धरती से मातृत्व सा वात्सल्य इसी भाषा से मिलता है। विदेशी भाषाओं के वार्तालापों से हम अपने देश के अपने ही लोगों में ज्ञानी नहीं बन सकते हैं। हमको यह समझना होगा कि जो लोग अपनी मातृभाषा का सम्मान नहीं कर सकते वह देश का सम्मान कैसे कर सकते हैं? आज हिंदी के ज्ञान को विद्यार्थियों ने अरुचिकर समझकर हिंदी पुस्तकों से दूरी बनानी शुरू कर दी है। यह अत्यंत ही दुःखद अहसास कराने वाले कृत्य हैं। हिंदी भाषा जन-जन की भाषा बने इसके लिए सरकार के साथ-साथ आम जन को भी इसके प्रचार और प्रसार करने की जरूरत है।

आचार्य राम कुमार बघेल, पलवल

प्लास्टिक में उलझी जिंदगी

प्लास्टिक की खोज निश्चित रूप से एक बड़ी उपलब्धि रही होगी, लेकिन इसने जिंदगी के हर क्षेत्र को प्रभावित कर रखा है। आज हालात ऐसे बन गए हैं कि इसको निगलना-उगलना दोनों ही मुश्किल हो गया है। सिंगल यूज प्लास्टिक का इस्तेमाल हर जगह हो रहा है। प्रधानमंत्री ने इसके प्रयोग को बंद करने की बात कही है, लेकिन इसका विकल्प क्या है? घर के रोजमर्रा के सामान से लेकर दवाई आदि सब कुछ तो प्लास्टिक में पैक है। वैज्ञानिकों को कोई ऐसी चीज निकालनी होगी, जिसमें चीजें सुरक्षित रखी जा सकें और वह पर्यावरण के अनुकूल भी हो।

kmishra|5yahoo.in

किसानों को पेंशन

मोदी सरकार ने किसानों को आर्थिक एवं सामाजिक मजबूती देने के लिए प्रधानमंत्री किसान मानधन योजना की शुरुआत की है। यह इस वर्ष प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि योजना के बाद दूसरी योजना है जिससे किसानों को आर्थिक मदद दी जा रही है। यह पेंशन योजना भविष्य में किसानों के लिए लाभदायक तो होगी, परंतु सरकार को वर्तमान समय में कृषि विकास दर में गिरावट एवं किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के बारे में भी सोचना होगा।

shish.sharmav0210gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।